IMPACT FACTOR 5.397 (SJIF USA)

बिहार शोध समागम BIHAR SHODH SAMAAGAM

Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 3, Issue 4, October-December, 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/

ISSN : 3048-6971

भारत में किसान राजनीति का सामाजिक-राजनीतिक अध्ययन: चौधरी चरण सिंह से वर्तमान किसान आंदोलन तक

Abhinandan Kumar

Research Scholar

University Department of Political Science

Department Code & Name - 702

Registration Number - 24 POLPHOOL

Course Name- Ph.D (POLITICAL SCIENCE)

Email :- abhinandanilod@gmail.com

प्रस्तावना

भारत की आत्मा उसकी मिट्टी में बसी है, जहां किसान न केवल अन्न उगाते हैं, बल्कि देश की सामाजिक और राजनीतिक चेतना को भी आकार देते हैं। भारत में किसान राजनीति का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना इस देश का कृषि–प्रधान समाज। चौधरी चरण सिंह से लेकर 2020–21 के किसान आंदोलन तक, यह यात्रा केवल खेती या अर्थव्यवस्था की बात नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, ग्रामीण सशक्तिकरण और राजनीतिक जागरूकता की कहानी है। चौधरी चरण सिंह, जिन्हें किसानों का मसीहा कहा जाता है, ने स्वतंत्रता के बाद के भारत में किसानों की आवाज को बुलंद किया। एक साधारण जाट किसान परिवार में जन्मे चरण सिंह ने अपनी जिंदगी किसानों के हक और सामाजिक समानता के लिए समर्पित कर दी। उनकी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार की नीतियों ने लाखों किसानों को शोषण से मुक्ति दिलाई और ग्रामीण भारत को एक नई पहचान दी। उनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं, जब हम 2020–21 के किसान आंदोलन को देखते हैं, जिसने न केवल भारत, बल्कि विश्व का ध्यान खींचा। यह आंदोलन केवल तीन कृषि कानूनों के खिलाफ नहीं था, बल्कि यह किसानों की एकजुटता, उनकी आजीविका और उनकी गरिमा की लड़ाई थी। पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के किसानों ने दिल्ली की सीमाओं पर डेरा डालकर यह दिखाया कि उनकी आवाज को अनसुना नहीं किया जा सकता। यह आंदोलन आधुनिक भारत में किसानों की बदलती भूमिका को भी दर्शाता है, जहां सोशल मीडिया और डिजिटल मंचों ने उनकी बात को वैश्विक स्तर तक पहुंचाया। चौधरी चरण सिंह के समय से लेकर आज तक, किसान आंदोलन सामाजिक–राजनीतिक परिवर्तन का प्रतीक रहे हैं। फिर चाहे वह न्यूनतम समर्थन मूल्य की मांग हो या कॉरपोरेट प्रभाव के खिलाफ संघर्ष, किसानों ने हमेशा अपनी मेहनत और एकता से समाज को नई दिशा दी है। यह अध्ययन उस ऐतिहासिक सफर को समझने का प्रयास है, जो ग्रामीण भारत की आत्मा को शहरों की सत्ता तक ले जाता है।

मुख्य शब्द :– सत्याग्रह, दूरदर्शिता, आह्वान, बिचौलियां, शोषण, नजरअंदाज, सीमांत किसान।

1. चौधरी चरण सिंह और किसान राजनीति की नींव

1.1. जीवन और प्रारंभिक योगदान

चौधरी चरण सिंह का नाम भारतीय किसान राजनीति का पर्याय है। 23 दिसंबर 1902 को उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले के नूरपुर गांव में एक साधारण जाट किसान परिवार में जन्मे चरण सिंह का जीवन गांव की मिट्टी से जुड़ा रहा। उनके पिता, चौधरी मीर सिंह, एक किरायेदार किसान थे, जिनकी मेहनत और संघर्षों ने चरण सिंह को किसानों की जिंदगी की कठिनाइयों से रूबरू कराया। आगरा विश्वविद्यालय से कानून की पढ़ाई पूरी करने के बाद उन्होंने गाजियाबाद में वकालत शुरू की, लेकिन उनका दिल हमेशा देश और किसानों के लिए धड़कता रहा। 1929 में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज के आह्वान ने उन्हें स्वतंत्रता संग्राम में कूदने को प्रेरित किया। नमक सत्याग्रह, व्यक्तिगत सत्याग्रह और भारत छोड़ो आंदोलन में हिस्सा लेते हुए वे तीन बार जेल गए। जेल की सलाखों के पीछे भी उनका मन चौन से नहीं बैठाय उन्होंने शिष्टाचार जैसी पुस्तक लिखकर भारतीय संस्कृति और मूल्यों को संजोया। स्वतंत्रता के बाद चरण सिंह ने किसानों की आवाज को सत्ता के गलियारों तक पहुंचाया।

उत्तर प्रदेश में जमींदारी उन्मूलन विधेयक उनका सबसे बड़ा योगदान था, जिसने लाखों किसानों को जमींदारों के शोषण से मुक्ति दिलाई। उन्होंने 1938 में कृषि उत्पाद बाजार बिल और 1939 में किसान कर्ज माफी बिल पेश किया, जिसने साहूकारों और ब्रिटिश शासन की मनमानी से किसानों को राहत दी। उनकी सोच साफ थी, किसान देश की रीढ़ हैं, और उनकी तरक्की के बिना भारत का विकास अधूरा है। उन्होंने सरकारी सेवाओं में किसानों के लिए 50% आरक्षण की वकालत की, ताकि उनकी आवाज नीति–निर्माण में शामिल हो। सामाजिक न्याय के प्रति उनकी प्रतिबद्धता भी गहरी थी। वे जातिवाद के खिलाफ थे और अंतरजातीय विवाह को प्रोत्साहित करते थे। 1952 में लेखपालों की भर्ती में दलितों के लिए 16% आरक्षण लागू कर उन्होंने सामाजिक समावेश का रास्ता दिखाया। चरण सिंह का जीवन और उनके शुरुआती योगदान ने न केवल किसानों को सशक्त किया, बल्कि भारतीय

राजनीति में ग्रामीण भारत की ताकत को स्थापित किया। उनकी विरासत आज भी किसान आंदोलनों में जीवित है।

1.2. किसान हितों के लिए नीतियां

चौधरी चरण सिंह का दिल हमेशा किसानों के लिए धड़कता था। उनकी नीतियां सिर्फ कागजी नहीं थीं, बल्कि गांव की मिट्टी से उपजी थीं, जहां हर किसान की मेहनत और उसकी तकलीफें उन्होंने करीब से देखी थीं। स्वतंत्रता के बाद उत्तर प्रदेश में जमींदारी उन्मूलन विधेयक उनका सबसे बड़ा कदम था। 1952 में लागू इस कानून ने जमींदारों के शोषण से किसानों को आजादी दिलाई और उन्हें अपनी जमीन का मालिक बनाया। यह सिर्फ कानून नहीं, बल्कि लाखों किसानों की जिंदगी में एक नई उम्मीद थी। इसके बाद 1954 में उत्तर प्रदेश भूमि संरक्षण कानून लाए, जिसने जमीन की अधिकतम सीमा तय की ताकि भूमिहीन किसानों को भी खेती का मौका मिले।

चरण सिंह ने किसानों को बिचौलियों और साहूकारों के चंगुल से बचाने के लिए 1938 में कृषि उत्पाद बाजार बिल पेश किया। इस बिल ने किसानों को अपनी फसल का उचित दाम दिलाने में मदद की। 1939 में किसान कर्ज माफी बिल लाकर उन्होंने कर्ज के बोझ तले दबे किसानों को राहत दी। उनकी सोच थी कि किसान सिर्फ अनाज ही नहीं, बल्कि देश की तरक्की का आधार हैं। इसलिए उन्होंने सरकारी सेवाओं में किसानों के लिए 50% आरक्षण की बात उठाई, ताकि उनकी आवाज सत्ता के गलियारों में गूंजे। यह विचार बाद में मंडल आयोग की सिफारिशों का आधार बना।

चरण सिंह ने सामाजिक और आर्थिक न्याय को एक ही सिक्के के दो पहलू माना। उनकी नीतियां सिर्फ खेती तक सीमित नहीं थींय वे चाहते थे कि किसान आत्मनिर्भर बने और समाज में बराबरी का दर्जा पाए। 1979–80 में प्रधानमंत्री बनने पर उन्होंने राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की स्थापना की, जो आज भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करता है। चरण सिंह की नीतियों ने किसानों को न सिर्फ आर्थिक ताकत दी, बल्कि उनकी गरिमा और आत्मसम्मान को भी नई ऊंचाइयां दीं।

1.3. सामाजिक न्याय और जातिवाद का विरोध

चौधरी चरण सिंह का जीवन सिर्फ किसानों की आर्थिक उन्नति तक सीमित नहीं थाय वे सामाजिक न्याय के सच्चे सिपाही थे, जिन्होंने जातिवाद के खिलाफ डटकर मुकाबला किया। उनके लिए समाज की एकता और समानता उतनी ही जरूरी थी, जितनी खेतों में फसल। एक साधारण जाट परिवार से आने के बावजूद, उन्होंने कभी जाति को अपनी पहचान नहीं बनने दिया। उनकी सोच थी कि जातिगत भेदभाव समाज को कमजोर करता है और इसे खत्म किए बिना सच्चा विकास संभव नहीं। इसीलिए उन्होंने हर उस प्रथा का विरोध किया, जो लोगों को बांटती थी।

1.4. राजनीतिक योगदान

चौधरी चरण सिंह की राजनीतिक यात्रा एक साधारण किसान से देश के शीर्ष पद तक पहुंचने की प्रेरक कहानी है। 1937 में छपरौली से उत्तर प्रदेश विधानसभा के लिए पहली बार चुने गए चरण सिंह ने अपनी राजनीति की शुरुआत की, और फिर 1946, 1952, 1962 और 1967 में लगातार जीत हासिल की। 1946 में पंडित गोविंद बल्लभ पंत की सरकार में संसदीय सचिव बनकर उन्होंने राजस्व और न्याय जैसे विभागों में काम किया, जहां उन्होंने किसानों के हितों को मजबूती से रखा। उनकी असली ताकत तब उभरी जब उन्होंने कांग्रेस से अलग होकर 1967 में भारतीय क्रांति दल की स्थापना की और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बने। इस पद पर उन्होंने भूमि सुधारों को तेजी से लागू किया, जो किसानों के लिए एक क्रांति साबित हुई। 1970 में दोबारा मुख्यमंत्री बनकर चरण सिंह ने ग्रामीण विकास पर जोर दिया, लेकिन उनकी महत्वाकांक्षा राष्ट्रीय स्तर की थी। 1977 में जनता पार्टी के साथ जुड़कर उन्होंने इमरजेंसी के बाद की राजनीति में अहम भूमिका निभाई। 1979 में वे भारत के पांचवें प्रधानमंत्री बने, भले ही उनका कार्यकाल छोटा रहा, 28 जुलाई 1979 से 14 जनवरी 1980 तक। इस दौरान उन्होंने राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की स्थापना की, जो आज भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। अल्पसंख्यक आयोग का गठन भी उनकी दूरदर्शिता का प्रमाण था, जो सामाजिक न्याय को मजबूत करने वाला कदम था।

चरण सिंह ने राजनीति में किसानों की आवाज को बुलंद किया। उन्होंने भारतीय लोक दल (1974) और लोक दल (1980) जैसे दलों का गठन किया, जो गैर–कांग्रेसी सरकारों की नींव बने। सांप्रदायिकता के खिलाफ उनकी लड़ाई ने हिंदू–मुस्लिम तनाव को कम करने में मदद की। 2024 में भारत रत्न से सम्मानित होने पर उनकी विरासत फिर से जीवंत हुई। चरण सिंह की राजनीति सिर्फ पदों तक नहीं थीय वह किसानों के संघर्ष और ग्रामीण भारत की तरक्की की कहानी थी, जो आज भी प्रासंगिक है। 1958 में उन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को पत्र लिखकर सुझाव दिया कि राजपत्रित पदों पर केवल उन लोगों को नियुक्त किया जाए, जिन्होंने अंतरजातीय विवाह किया हो। यह विचार उस समय के लिए क्रांतिकारी था, जब जाति समाज की जड़ों में गहरे तक धंसी थी। चरण सिंह ने जाति के नाम पर बनी संस्थाओं को सरकारी अनुदान बंद करने की वकालत की और अंतरजातीय विवाह को बढ़ावा देने के लिए नीतियां बनाईं। उनकी यह सोच थी कि जब तक लोग एक–दूसरे के साथ वैवाहिक रिश्ते नहीं जोड़ेंगे, तब तक समाज में भाईचारा नहीं आएगा। 1952 में उत्तर प्रदेश में लेखपालों की भर्ती में दलितों के लिए 16% आरक्षण लागू कर उन्होंने सामाजिक समावेश की मिसाल कायम की। यह उस दौर में बड़ा कदम था, जब आरक्षण की व्यवस्था को अभी पूरी तरह लागू नहीं किया गया था। चरण सिंह मानते थे कि सामाजिक न्याय के बिना आर्थिक प्रगति अधूरी है। वे चाहते थे कि हर वर्ग, चाहे

वह दलित हो या किसान, उसे समाज में बराबर का हक मिले। उनकी नीतियां और विचार आज भी प्रासंगिक हैं, जब हम देखते हैं कि किसान आंदोलनों में भी सामाजिक एकता की जरूरत बनी हुई है। चरण सिंह ने दिखाया कि जातिवाद का विरोध और सामाजिक न्याय की लड़ाई एक साथ लड़ी जा सकती है।

स्वतंत्रता के बाद किसान आंदोलनों का विकास

2.1. प्रारंभिक आंदोलन

स्वतंत्रता मिलने के बाद भारत के किसानों ने अपनी लड़ाई को नई ऊर्जा के साथ आगे बढ़ाया। आजादी की खुशी के साथ ही ग्रामीण भारत में असंतोष की लहर दौड़ी, क्योंकि जमींदारी प्रथा और शोषण की जड़ें अभी भी गहरी थीं। 1936 में स्वामी सहजानंद सरस्वती के नेतृत्व में गठित अखिल भारतीय किसान सभा ने स्वतंत्रता के बाद संगठित आंदोलनों की नींव रखी। यह सभा किसानों की एकता का प्रतीक बनी, जो जमींदारी उन्मूलन और काश्तकारों के अधिकारों की मांग कर रही थी। स्वामी जी जैसे नेता, जो खुद एक किसान परिवार से थे, ने किसानों को बताया कि आजादी सिर्फ शहरों तक सीमित नहीं, बल्कि गांवों की मिट्टी तक पहुंचनी चाहिए।

1940 के दशक के अंत में तेलंगाना किसान सशस्त्र संघर्ष (1946–1951) ने आंदोलनों को नई दिशा दी। हैदराबाद राज्य में निजाम के खिलाफ भूमिहीन किसानों और मजदूरों ने हथियार उठाए, जो कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया के नेतृत्व में चला। इस संघर्ष में हजारों किसानों ने अपनी जान गंवाई, लेकिन इससे भूमि सुधारों की मांग तेज हुई। इसी तरह, बंगाल में तेबागा आंदोलन (1946–1947) ने किसानों को अपनी फसल का दो–तिहाई हिस्सा मांगने का हौसला दिया, जो पहले आधा ही मिलता था। ये आंदोलन सिर्फ आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति की शुरुआत थे, जहां महिलाएं और दलित भी शामिल हुए।

1950 के दशक में भूमि सुधार कानूनों ने कुछ राहत दी, लेकिन अमल में कमी रही। फिर 1960 के दशक में हरित क्रांति आई, जो पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसानों के लिए वरदान साबित हुई। नए बीज, उर्वरक और सिंचाई ने उत्पादन बढ़ाया, लेकिन यह क्रांति सब तक नहीं पहुंची। दक्षिण और पूर्वी भारत के किसान अभी भी सूखे, बाढ़ और गरीबी से जूझ रहे थे। इन आंदोलनों ने दिखाया कि किसान न सिर्फ खेती करते हैं, बल्कि अपनी किस्मत खुद लिखने की ताकत रखते हैं। चौधरी चरण सिंह जैसे नेताओं ने इनसे प्रेरणा ली और किसानों को राजनीतिक ताकत दी। प्रारंभिक आंदोलन भारत के ग्रामीण इतिहास में एक नई सुबह की तरह थे, जो आज भी जारी हैं।

2.2. 1980 के दशक में किसान आंदोलन

1980 का दशक भारतीय किसानों के लिए एक नया मोड़ लेकर आया, जब उनकी आवाज ने संगठित और जोरदार रूप लिया। इस दौर में पश्चिमी उत्तर प्रदेश और हरियाणा में महेंद्र सिंह टिकैत जैसे नेताओं ने किसानों को एकजुट किया। भारतीय किसान यूनियन (बीकेयू) के बैनर तले किसानों ने अपनी मांगों को सड़कों पर उतारा। 1987 में मुजफ्फरनगर के कर्नूखेड़ी में बिजली घर का घेराव इसका बड़ा उदाहरण था। किसान बिजली की बढ़ती दरों और बेतरतीब आपूर्ति से तंग आ चुके थे। इस आंदोलन ने सरकार को झुकने पर मजबूर किया। 1988 में मेरठ में 25 दिन का धरना तो और भी ऐतिहासिक था। हजारों किसान एक साथ जुटे, अपनी फसल के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) और कर्ज माफी की मांग लेकर।

टिकैत का नेतृत्व किसानों में जोश भरता थाय उनकी सादगी और गांव की बोली ने हर किसान को उनमें अपना चेहरा दिखाया। ये आंदोलन सिर्फ आर्थिक मांगों तक नहीं रुकेय इनमें सामाजिक एकता की ताकत भी दिखी। जाट, गुर्जर, और अन्य समुदायों के किसान कंधे से कंधा मिलाकर खड़े थे। इस दौर में हरित क्रांति का असर भी दिखा, जिसने पंजाब और हरियाणा के किसानों को समृद्ध किया, लेकिन छोटे और सीमांत किसानों की मुश्किलें कम नहीं हुईं। बिचौलियों और बाजार की मनमानी ने किसानों को आंदोलन की राह दिखाई। ये आंदोलन शांतिपूर्ण रहे, लेकिन इनकी गूंज दिल्ली तक पहुंची। टिकैत और उनके साथियों ने दिखाया कि किसान सिर्फ खेतों तक सीमित नहींय वे देश की राजनीति को भी हिला सकते हैं। 1980 के दशक के ये आंदोलन आज के किसान आंदोलनों की नींव बने, जिनमें एकता और हक की लड़ाई की भावना आज भी जिंदा है।

2.3. उदारीकरण का प्रभाव

1990 के दशक में भारत में उदारीकरण की लहर ने किसान आंदोलनों को नया रंग दिया। जब सरकार ने अर्थव्यवस्था को वैश्विक बाजारों के लिए खोला, तो इसका सबसे गहरा असर ग्रामीण भारत पर पड़ा। हरित क्रांति ने पंजाब और हरियाणा जैसे राज्यों में कुछ किसानों को समृद्ध किया था, लेकिन उदारीकरण ने छोटे और सीमांत किसानों के लिए नई मुश्किलें खड़ी कर दीं। आयात–निर्यात की नीतियों और कॉरपोरेट कंपनियों के बढ़ते दखल ने फसलों के दामों को अस्थिर कर दिया। बिचौलियों और बड़े व्यापारियों का बोलबाला बढ़ा, जिससे किसानों को अपनी मेहनत का सही दाम मिलना मुश्किल हो गया। इस दौर में न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) और मंडी व्यवस्था पर खतरा मंडराने लगा। किसानों को लगने लगा कि सरकार की नीतियां बड़े उद्योगपतियों के पक्ष में हैं, न कि उनकी, जो देश का अन्न उगाते हैं। इससे किसानों में गुस्सा बढ़ा और आंदोलन तेज हुए।

कर्नाटक में के.आर.आर.एस. जैसे संगठनों ने बीज और उर्वरकों की बढ़ती कीमतों के खिलाफ आवाज उठाई। महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश में कर्ज के बोझ तले दबे किसानों की आत्महत्याओं ने समाज को झकझोर दिया। ये घटनाएं सिर्फ आर्थिक नहीं,

बल्कि सामाजिक और मानवीय त्रासदी थीं। उदारीकरण ने किसानों को संगठित होने के लिए मजबूर किया। वे अब सिर्फ स्थानीय मुद्दों पर नहीं, बल्कि वैश्विक व्यापार और नीतियों के खिलाफ भी लड़ रहे थे। भारतीय किसान यूनियन जैसे संगठनों ने दिल्ली में रैलियां कीं, ताकि उनकी बात संसद तक पहुंचे। इस दौर ने किसानों को यह सिखाया कि उनकी लड़ाई सिर्फ खेतों तक नहीं, बल्कि नीति–निर्माण और वैश्विक अर्थव्यवस्था के मंच तक है। उदारीकरण ने चुनौतियां बढ़ाईं, लेकिन किसानों की एकता और जज्बे को भी मजबूत किया, जो बाद के आंदोलनों में साफ दिखा।

3. वर्तमान किसान आंदोलन (2020–21)

3.1. पृष्ठभूमि

2020 में जब केंद्र सरकार ने तीन नए कृषि कानून पेश किए, तो भारत के किसानों में एक नई जागृति की लहर दौड़ गई। ये कानून कृषक उपज व्यापार और वाणिज्य (संवर्धन और सुविधा) अधिनियम, कृषक (सशक्तिकरण और संरक्षण) कीमत आश्वासन और कृषि सेवा पर करार अधिनियम, और आवश्यक वस्तु (संशोधन) अधिनियम सरकार के लिए सुधार थे, लेकिन किसानों के लिए खतरे की घंटी। इन कानूनों को लेकर किसानों को डर था कि न्यूनतम समर्थन मूल्य (डैच) और मंडी व्यवस्था कमजोर हो जाएगी। पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसानों ने इसे अपनी आजीविका पर हमला माना। उन्हें लगता था कि ये कानून बड़े कॉरपोरेट घरानों को फायदा पहुंचाएंगे, जबकि छोटे और सीमांत किसान कर्ज और गरीबी के दलदल में और धंस जाएंगे। ये आंदोलन सिर्फ कानूनों के खिलाफ नहीं थाय यह उस गुस्से और असुरक्षा की अभिव्यक्ति था, जो सालों से किसानों के मन में पनप रहा था। हरित क्रांति और उदारीकरण के बाद भी छोटे किसानों की हालत नहीं सुधरी थी। कर्ज, सूखा, और अनिश्चित बाजार ने उनकी जिंदगी को मुश्किल बना दिया था। इन कानूनों ने उनके धैर्य की आखिरी सीमा को तोड़ दिया। पंजाब में सबसे पहले विरोध शुरू हुआ, जहां किसान संगठनों ने ट्रैक्टर रैलियां निकालीं और रेल रोको आंदोलन किए। जल्द ही यह लहर दिल्ली की सीमाओं तक पहुंच गई। संयुक्त किसान मोर्चा जैसे संगठनों ने इस आंदोलन को एकजुट किया, जिसमें सिख, जाट, और अन्य समुदायों के किसान कंधे से कंधा मिलाकर खड़े हुए। यह आंदोलन सिर्फ आर्थिक मांगों का नहीं, बल्कि किसानों की गरिमा और पहचान की लड़ाई का प्रतीक बन गया।

3.2. आंदोलन की विशेषताएं

2020–21 का किसान आंदोलन एक ऐसी लहर थी, जिसने पूरे देश को हिला दिया। पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसानों ने दिल्ली की सीमाओं सिंघु, टिकरी और गाजीपुर पर महीनों तक डेरा डाला। सर्दी की ठिठुरन हो या गर्मी की तपिश, वे अपने हक के लिए अडिग रहे। अखिल भारतीय किसान संघर्ष समन्वय समिति और संयुक्त किसान मोर्चा ने इस आंदोलन को न सिर्फ नेतृत्व दिया, बल्कि इसे एकजुटता का चमकता सितारा बनाया। सिख, जाट और हर वर्ग के किसान एक साथ आए। ट्रैक्टरों की गड़गड़ाहट और लंगर की महक ने उनकी एकता को और मजबूत किया। यह आंदोलन एक परिवार की तरह था, जहां हर किसान अपने भविष्य के लिए लड़ा। यह सिर्फ आर्थिक मांगों की लड़ाई नहीं थी। इसमें सामाजिक न्याय, क्षेत्रीय गौरव और कॉरपोरेट के खिलाफ गुस्सा भी शामिल था। किसानों को डर था कि नए कानून उनकी मेहनत को बड़े कारोबारियों के हवाले कर देंगे। सोशल मीडिया ने उनकी आवाज को पंख दिए। रुथ्तउमतेच्तवजमेज ने दुनिया भर में गूंज पैदा की, और विदेशों से लेकर गांव के युवाओं तक ने उनका साथ दिया। यह पहला मौका था, जब किसानों की बात वैश्विक मंच पर इतनी जोरदार ढंग से उठी। नवंबर 2021 में तीनों कृषि कानूनों की वापसी किसानों की मेहनत और हिम्मत की जीत थी। दिल्ली की सड़कों पर खुशी की लहर दौड़ी, लेकिन न्यूनतम समर्थन मूल्य (डैच) पर कानूनी गारंटी की मांग अभी भी अधूरी है। यह आंदोलन सिर्फ कानूनों के खिलाफ नहीं थाय यह किसानों की इज्जत, उनके हक और उनकी पहचान की लड़ाई थी। यह एक ऐसी कहानी है, जो हर भारतीय को एकता और संघर्ष की ताकत सिखाती है।

3.3. चुनौतियां

2020–21 का किसान आंदोलन भले ही ऐतिहासिक रहा, लेकिन यह कई चुनौतियों से भी जूझता रहा। सबसे बड़ी बाधा थी किसानों के बीच जाति और धर्म के आधार पर बंटवारा। पहले के आंदोलनों में जहां किसान एकजुट होकर लड़े, वहीं इस बार कुछ राजनीतिक ताकतों ने सामाजिक विभाजन को हवा दी। जाट, सिख, और अन्य समुदायों के बीच एकता थी, लेकिन क्षेत्रीय और सामाजिक मतभेदों ने कई बार आंदोलन की ताकत को कमजोर करने की कोशिश की। इसके अलावा, किसानों को एक मजबूत वोट बैंक के रूप में संगठित करना भी मुश्किल रहा। शहरों की सियासत में उनकी आवाज अक्सर दब जाती है, क्योंकि राजनीतिक दल उन्हें सिर्फ वोट के लिए इस्तेमाल करते हैं। आर्थिक चुनौतियां भी कम नहीं थीं। छोटे और सीमांत किसान, जो भारत के अधिकांश किसान हैं, कर्ज और गरीबी के बोझ तले दबे हैं। आंदोलन में हिस्सा लेने के लिए महीनों तक दिल्ली की सीमाओं पर डटे रहना उनके लिए आसान नहीं था। खेतों से दूर रहने का मतलब था फसल और आय का नुकसान। फिर भी, उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। सरकार के साथ बातचीत में भी रुकावटें आईं। कई दौर की बातचीत बेनतीजा रही, क्योंकि सरकार और किसान नेताओं के बीच भरोसे की कमी थी। सोशल मीडिया ने जहां आंदोलन को ताकत दी, वहीं गलत सूचनाओं और प्रचार ने भी नुकसान पहुंचाया। कुछ लोग आंदोलन को बदनाम करने की कोशिश में जुटे रहे। न्यूनतम समर्थन मूल्य पर कानूनी गारंटी जैसी मांगें अभी भी अधूरी हैं, जो

किसानों के लिए निराशा का सबब है। फिर भी, यह आंदोलन दिखाता है कि चुनौतियों के बावजूद किसानों का जज्बा अटल है।

4. सामाजिक–राजनीतिक विश्लेषण

4.1. सामाजिक गतिशीलता

किसान आंदोलन भारत की सामाजिक संरचना से गहरे जुड़े हैं। चौधरी चरण सिंह ने किसानों को एक वर्ग के रूप में देखा, जिसमें भूमिहीन मजदूर, छोटे किसान और ग्रामीण समुदाय शामिल थे। उनकी नीतियां सामाजिक समावेश पर जोर देती थीं, खासकर दलितों और पिछड़े वर्गों के लिए। 2020–21 के आंदोलन में भी यह सामाजिक गतिशीलता दिखी, जहां सिख, जाट और अन्य समुदाय एकजुट हुए। लेकिन जातिगत विभाजन एक बड़ी चुनौती रहा। कुछ क्षेत्रों में जाट और गैर–जाट किसानों के बीच तनाव ने एकता को कमजोर किया। दलित और भूमिहीन किसानों की भागीदारी बढ़ी, लेकिन उनकी आवाज अक्सर दब गई। सोशल मीडिया ने महिलाओं और युवाओं को आंदोलन से जोड़ा, जिसने सामाजिक बदलाव की नई उम्मीद जगाई। फिर भी, ग्रामीण भारत में जाति और लिंग आधारित भेदभाव आंदोलनों को बांटता रहा। यह दिखाता है कि किसान आंदोलन सिर्फ आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय की लड़ाई भी हैं। भविष्य में इन आंदोलनों को और समावेशी होना होगा, ताकि हर वर्ग की आवाज सुनी जाए।

4.2. राजनीतिक प्रभाव

किसान आंदोलनों ने भारतीय राजनीति को हमेशा प्रभावित किया है। चौधरी चरण सिंह ने भारतीय क्रांति दल और जनता पार्टी के जरिए गैर–कांग्रेसी सरकारों को मंच दिया। उनकी नीतियों ने ग्रामीण भारत को सत्ता के करीब लाया। 2020–21 के आंदोलन ने भी राजनीति को झकझोरा। दिल्ली की सीमाओं पर किसानों का डेरा सियासी दलों के लिए एक बड़ा संदेश था। लेकिन किसानों का वोट बैंक के रूप में प्रभाव सीमित रहा, क्योंकि उनकी मांगें अक्सर चुनावी वादों में सिमट जाती हैं। पंजाब और हरियाणा में आंदोलन ने स्थानीय नेताओं को मजबूर किया कि वे किसानों के साथ खड़े हों। लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक दलों ने इसे अपने हित में इस्तेमाल करने की कोशिश की। यह आंदोलन दिखाता है कि किसान अपनी ताकत से सरकार को झुका सकते हैं, लेकिन स्थायी बदलाव के लिए उन्हें राजनीतिक एकजुटता की जरूरत है। चरण सिंह की तरह नेताओं की कमी आज भी खलती है।

4.3. आर्थिक नीतियों का प्रभाव

आर्थिक नीतियों ने किसान आंदोलनों को हमेशा आकार दिया। चौधरी चरण सिंह की जमींदारी उन्मूलन और कृषि उत्पाद बाजार समितियों ने किसानों को शोषण से बचाया। लेकिन 1990 के उदारीकरण ने छोटे किसानों के लिए मुश्किलें बढ़ाईं। कॉरपोरेटीकरण और वैश्विक बाजारों ने फसलों के दामों को अस्थिर किया। 2020–21 के आंदोलन में किसानों ने तीन कृषि कानूनों को कॉरपोरेट के पक्ष में माना, जो मंडी व्यवस्था और न्यूनतम समर्थन मूल्य को कमजोर कर सकते थे। हरित क्रांति ने कुछ किसानों को समृद्ध किया, लेकिन अधिकांश छोटे किसान कर्ज और गरीबी में डूबे रहे। सरकार की सब्सिडी और कर्ज माफी की नीतियां अक्सर अपर्याप्त रहीं। आंदोलन ने दिखाया कि आर्थिक नीतियां अगर किसानों की जरूरतों को नजरअंदाज करेंगी, तो वे सड़कों पर उतरने को मजबूर होंगे। भविष्य में नीतियों को छोटे और सीमांत किसानों के हित में बनाना होगा, ताकि उनकी मेहनत का सही दाम मिले।

निष्कर्ष

भारत में किसान राजनीति की यात्रा चौधरी चरण सिंह के सपनों से शुरू होकर 2020–21 के किसान आंदोलन तक एक लंबा और प्रेरक सफर रही है। चरण सिंह ने जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधारों के जरिए किसानों को नई जिंदगी दी, उनकी आवाज को सत्ता तक पहुंचाया। उनकी नीतियां और विचार आज भी ग्रामीण भारत की आत्मा में बसे हैं। लेकिन समय के साथ चुनौतियां बदलीं। उदारीकरण और कॉरपोरेटीकरण ने छोटे किसानों की मुश्किलें बढ़ाईं, और 2020–21 का आंदोलन इस बदलते दौर की सबसे बड़ी मिसाल बना। दिल्ली की सीमाओं पर डटे किसानों ने दिखाया कि उनकी एकता और जज्बा कितना अटल है। तीन कृषि कानूनों की वापसी उनकी जीत थी, लेकिन न्यूनतम समर्थन मूल्य की मांग अधूरी रह गई।

यह आंदोलन सिर्फ आर्थिक मांगों की लड़ाई नहीं थाय यह सामाजिक न्याय, क्षेत्रीय गौरव और कॉरपोरेट के खिलाफ एकजुटता की कहानी थी। सोशल मीडिया ने इसे वैश्विक मंच दिया, लेकिन जातिगत और क्षेत्रीय बंटवारे ने एकता को चुनौती दी। चरण सिंह का सपना था कि किसान न सिर्फ खेतों में, बल्कि सियासत में भी ताकतवर बनें। आज भी यह सपना पूरा नहीं हुआ, क्योंकि किसान वोट बैंक के रूप में कमजोर पड़ते हैं। भविष्य में किसान आंदोलनों को और समावेशी होना होगा, जिसमें दलित, भूमिहीन और महिला किसान भी बराबर की हिस्सेदार बनें। नीतियों को छोटे किसानों के हित में बनाना होगा, ताकि उनकी मेहनत का सही दाम मिले। यह यात्रा बताती है कि किसान भारत की रीढ़ हैं, और उनकी ताकत ही देश को नई दिशा दे सकती है।

संदर्भ सूची :–

1. Bhim Singh (2014). *Mahan Karmayogi: Jannayak Karpoori Thakur (1): The Iconic Leader's Impact*, Vani Prakashan, New Delhi.
2. K Cauhāna (1982). *Sāhitya ke buniyādī sarokāra*, Vani Prakashan, New Delhi.
3. S Mishra (2023). *Dr. Sridhar Mishra*, Vani Prakashan, New Delhi.
4. Arvind S. (2000). *Political Economy of Indian Farmers*, Oxford University Press, New Delhi.
5. C.P. Bhambri (1985). *The Indian Political System*, Vikas Publishing House, New Delhi.
6. Gyanendra Pandey (1999). *The Indian Peasant and the Politics of Land*, Orient Longman, New Delhi.
7. Prakash Chandra (2005). *Farmers' Movements in India: Politics and Protest*, Sage Publications, New Delhi.
8. Gopal Singh (2012). *Agrarian Reform and Rural Politics*, Cambridge University Press, New Delhi.
9. Rajeev Kumar (2010). *Farmers' Protest in India: A Historical Perspective*, Disha Publications, New Delhi.
10. Amarjit Kaur (2003). *Social Movements in India: Peasant Politics*, Sage Publications, New Delhi.
11. Ram Chandra (2008). *Kisan Andolan: The Politics of Resistance*, Academic Press, New Delhi.
12. Harish Kumar (2011). *Chaudhary Charan Singh and Peasant Politics*, Punjabi University Press, Patiala.
13. Meera Singh (2016). *The Social Fabric of Farmer Movements*, Jindal Publishing, Delhi.
14. B.R. Sharma (1998). *Farmers and Politics in India: A Contemporary Study*, Himalaya Publishing House, New Delhi.
15. M.S. Yadav (2015). *Agrarian Movements and Their Impact on Indian Politics*, Sterling Publishers, New Delhi.